**व्याख्यान XIV**

भारतीय न्यायपालिका

नमस्कार!

भारतीय संविधान पर ऑनलाइन पाठ्यक्रम में आपका स्वागत है जो भारत सरकार के विधि और न्याय मंत्रालय के सहयोग से नालसर विधि विश्वविद्यालय, हैदराबाद द्वारा प्रस्तुत किया जा रहा है।

पिछले व्याख्यान में, हमने संघीय कार्यपालिका के बारे में चर्चा की थी और आज हम अपने देश के तीसरे सबसे महत्वपूर्ण अंग यानी भारतीय न्यायपालिका के बारे में चर्चा करने जा रहे हैं। इसलिए, जैसा कि हमने पहले चर्चा की थी कि भारतीय संविधान एक संघीय संविधान है। संघवाद को संविधान की मूल संरचना का अंग माना गया है।

**संघवाद क्या है?**

संघवाद केंद्र और राज्य के बीच शक्तियों के वितरण का नाम है। यदि दो सरकारों को सत्ता आवंटित की जाती है, तो विवाद पैदा होना तय है। और इसलिए इन विवादों को सुलझाने के लिए एक स्वतंत्र निकाय की आवश्यकता है। इसके अलावा किसी भी संघीय संविधान में, संविधान की सर्वोच्चता संघवाद का अनिवार्य घटक है। यदि संविधान की सर्वोच्चता को बनाए रखना है, तो हमें स्वतंत्र और निष्पक्ष न्यायपालिका की आवश्यकता होती है ताकि निष्पक्ष और स्वतंत्र रूप से संविधान की व्याख्या की जा सके। इसके अलावा संविधान कुछ मौलिक अधिकारों की गारंटी देता है। केवल एक स्वतंत्र अंग ही इन अधिकारों की रक्षा कर सकता है और इसलिए न्यायपालिका को लोगों के मौलिक अधिकारों के रक्षक और गारंटर की भूमिका दी गई है।

वास्‍तव में, भारतीय संविधान के तहत सच्चा संघवाद केवल न्यायपालिका में दिखाई देता है क्योंकि हमारे उच्च न्यायालय सर्वोच्च न्यायालय के अधीनस्थ नहीं हैं। भारत के मुख्य न्यायाधीश उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीशों और न्यायाधीशों के बॉस नहीं हैं। वास्तव में सर्वोच्च न्यायालय के संबंध में भारत के मुख्‍य न्‍यायाधीश केवल बराबर वालों में प्रथम हैं।

**न्यायिक समीक्षा क्या है?**

न्यायिक समीक्षा संवैधानिक न्यायालयों को कानूनों की संवैधानिकता और कार्यपालिका के कार्यों की जांच करने की शक्ति है। भारतीय संविधान में ‘न्यायिक समीक्षा’ शब्दों का प्रयोग नहीं किया गया है। अमेरिकी संविधान के विपरीत, हमारा संविधान स्पष्ट रूप से न्यायिक शक्ति को अदालतों में निहित नहीं करता है, लेकिन शक्तियों के पृथक्करण सिद्धांत को संविधान में तीन अंगों के कार्यों के विभाजन के रूप में शामिल किया गया है। इसलिए न्यायिक शक्ति राज्य की न्यायिक शक्ति के अर्थ में स्पष्ट रूप से अदालतों में निहित है और यह स्वतंत्रता से पहले भी थी। इसलिए, भारत में न्यायालयों को राज्य की कार्रवाई की समीक्षा करने की शक्ति है। हमारे संविधान के अनुच्छेद 32 और 226 के साथ अनुच्छेद 13 को पढ़ा जाता है, तो किसी भी विधायी, कार्यकारी या प्रशासनिक कार्रवाई को शून्य घोषित करने के लिए सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों को न्यायिक समीक्षा की शक्ति प्राप्‍त है।

**क्या न्यायिक समीक्षा लोकतंत्र विरोधी है?**

एक बड़ा सवाल जो वैध रूप से उठाया जा सकता है, अगर हम जजों को यह अधिकार दे रहे हैं कि उनके फैसले संसद में बैठे लोगों के लोकतांत्रिक तरीके से चुने गए प्रतिनिधियों के फैसलों पर हावी होंगे, तो क्या यह लोकतंत्र विरोधी नहीं हैं? इसका उत्तर यह है कि न्यायिक समीक्षा भले ही अलोकतांत्रिक लग सकती है लेकिन यह शक्ति संवैधानिकता सुनिश्चित करने के लिए दी गई है। ताकि संसद और सरकार अपने आवंटित क्षेत्र में रहें और संविधान द्वारा निर्धारित सीमाओं का उल्लंघन न करें ताकि संविधान की सर्वोच्चता बनी रहे और संसद बहुसंख्यकवाद का शिकार न हो जाए।

हमारे गणतंत्र के जन्म से पहले ही नेहरू के कद के राजनेता ने संविधान सभा में 10 सितंबर, 1949 को न्यायिक समीक्षा पर सरकार के दृष्टिकोण को स्पष्ट रूप से विस्तार से बताया था, नेहरू ने कहा था:

*“सीमा के भीतर कोई भी न्यायाधीश और कोई सर्वोच्च न्यायालय खुद को तीसरा कक्ष नहीं बना सकता है। कोई भी सर्वोच्च न्यायालय और कोई न्यायपालिका संसद की संप्रभुता पर निर्णय नहीं ले सकती है। अगर हम गलती से इधर-उधर जाते हैं, तो यह बता सकता है, लेकिन अंतिम विश्लेषण में जहां तक समुदाय के भविष्य की चिंता का विषय है, वहां कोई न्यायपालिका आड़े नहीं आ सकती”।*

और फिर नेहरू ने कहा कि "अगर यह रास्ते में आता है, तो अंततः पूरा संविधान ही संसद की सृष्टि है।"

उन्होंने सरकार समर्थक न्यायाधीशों के चयन की संभावना पर कहा कि यदि अदालतें बाधा साबित होती हैं, तो बाधा को दूर करने का एक तरीका कार्यपालिका अपना सकती है जो न्यायाधीशों की नियुक्ति प्राधिकारी है जो अपने पक्ष में निर्णय पाने के लिए अपनी पसंद के न्यायाधीशों की नियुक्ति करना शुरू कर सकती है।

**न्यायाधीशों का अधिक्रमण**

भारतीय संविधान भारत के मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति के लिए कोई प्रक्रिया निर्धारित नहीं करता है। लेकिन भारत के मुख्य न्यायाधीश के रूप में वरिष्ठतम न्यायाधीश को नियुक्त करने के लिए एक स्वस्थ परंपरा विकसित की गई है। पंडित नेहरू द्वारा दी गई धमकी के बाद, प्रधान मंत्री के रूप में इंदिरा गांधी ने दो बार न्यायाधीशों का अधिक्रमण किया अर्थात कनिष्ठ न्यायाधीशों को भारत के मुख्य न्यायाधीश के रूप में नियुक्त किया, ये दो न्यायाधीश जिन्हें भारत के मुख्य न्यायाधीश के रूप में नियुक्त किया गया था, वे थे न्यायमूर्ति ए.एन. रे और न्यायमूर्ति एम.एच. बेग।

**न्यायिक सक्रियता क्या है?**

ब्लैक लॉ डिक्शनरी के अनुसार न्यायिक सक्रियता न्यायिक निर्णय लेने का दर्शन है जिसके द्वारा न्यायाधीश अपने निर्णयों को दिशा देने के लिए अन्य कारकों के साथ-साथ सार्वजनिक नीति के बारे में अपने व्यक्तिगत विचारों को व्‍यक्‍त करते हैं। हमारे पास कानून के न्यायालय हैं और इसलिए हमारे न्यायाधीशों को कानून के अनुसार न्याय करना चाहिए, उन्हें अपने व्यक्तिगत विचारों के अनुसार फैसले नहीं करने चाहिए।

बदलती सामाजिक या आर्थिक परिस्थितियों के अनुकूल या व्यक्तियों के अधिकारों का विस्तार करने के प्रावधान को एक नया अर्थ देना न्यायिक सक्रियता कहलाता है। इस प्रकार जब न्यायालय कार्यपालिका और विधायिका के कार्य ग्रहण करते हैं, तो हम इसे न्यायिक सक्रियता कहते हैं। प्रस्तावना में उल्लिखित सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक न्याय और अन्य ऊँचे लक्ष्यों को प्राप्त करने के नाम पर, भारतीय न्यायाधीश अपनी शक्तियों का विस्तार करते रहे हैं और कार्यपालिका के गलत कार्यों की निष्क्रियता के आलोचक रहे हैं।

सर्वोच्च न्यायालय को असाधारण शक्तियां देने वाले सबसे महत्वपूर्ण संवैधानिक प्रावधानों में से एक अनुच्छेद 142 है; यह प्रावधान सर्वोच्च न्यायालय को 'पूर्ण न्याय' के लिए उपयुक्त डिक्री या आदेश पारित करने का अधिकार देता है। इस तथ्य के बावजूद कि कानून बनाने की शक्ति मुख्य रूप से संसद के पास है, भारत का सर्वोच्च न्यायालय कई बार अपनी शक्तियों को अनुच्‍छेद 142 के तहत लागू करता रहा है। यह प्रावधान न केवल न्यायिक सक्रियता के लिए बल्कि भारत में न्यायिक कानून के लिए भी जिम्मेदार है।

**न्यायिक सक्रियता ने भारत में कैसे काम किया है?**

विशाखा बनाम राजस्थान राज्य (2004) के फैसले में, सर्वोच्च न्यायालय ने लैंगिक समानता के बुनियादी मानव अधिकार को प्रभावी ढंग से लागू करने और यौन उत्पीड़न और दुर्व्यवहार विशेष रूप से कार्यस्थलों पर यौन उत्पीड़न के खिलाफ गारंटी देने वाले अधिनियमित कानून की अनुपस्थिति में माना कि जब तक इसके लिए कोई कानून नहीं बनाया जाता है, तब तक सभी कार्यस्थलों या अन्य संस्थानों में उचित पालन के लिए हम दिशानिर्देश और मापदंड निर्धारित करते है। यदि इस असाधारण स्थिति में कानून नहीं है, तो सर्वोच्च न्यायालय अनुच्छेद 142 के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग कर सकता है और दिशानिर्देश जारी कर सकता है। यदि आप विशाखा मामले को देखें, तो बाद में संसद ने कानून बनाया था और कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न (रोकथाम, निषेध और निवारण) अधिनियम 2013 में पारित किया गया था। इसी तरह 2018 में सुप्रीम कोर्ट ने ऑनर किलिंग और भीड़ हत्या के मामलों में दिशानिर्देश निर्धारित किये थे।

हमारे संविधान के पहले दो दशकों में सर्वोच्च न्यायालय ने न्यायिक संयम दिखाया और संवैधानिक सीमाओं के भीतर सख्ती से काम किया। तदनुसार, जैसा कि हम पहले अनुच्छेद 21 संबंधी अपने व्याख्यान में चर्चा कर चुके हैं। ए.के. गोपालन मामले में 'कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया' शब्दों की संकीर्ण व्याख्या दी और माना कि यदि कानून द्वारा स्थापित कोई प्रक्रिया है, तो सुप्रीम कोर्ट कुछ नहीं कर सकती है। लेकिन बाद में मेनका गांधी मामले में 1978 में सुप्रीम कोर्ट ने माना कि ऐसा कानून न्यायसंगत, निष्पक्ष, उचित और गैर-मनमाना होना चाहिए।

इसलिए, अदालत ने न्यायिक सक्रियता के माध्यम से मौलिक अधिकारों के दायरे को बढ़ाना शुरू कर दिया है। इसी तरह, इसने 'राज्य' की परिभाषा का भी विस्तार किया, जिसके खिलाफ मौलिक अधिकार मूल रूप से अनुच्छेद 12 में उपलब्ध हैं।

वास्तव में कई नये अधिकार जैसे निष्पक्ष और त्वरित न्‍याय का अधिकार, शिक्षा का अधिकार, आजीविका का अधिकार, स्वास्थ्य का अधिकार, पर्यावरण का अधिकार को अनुच्छेद 21 का हिस्सा बनाया गया और कई न्यायिक रूप से बनाये गये मानवाधिकार लागू हुए।

इसी तरह कई नीति निदेशक सिद्धांतों को मौलिक अधिकारों के हिस्से के रूप में पढ़ा गया।

संविधान की व्याख्या के माध्यम से, सर्वोच्च न्यायालय ने वस्तुतः न्यायाधीशों की नियुक्ति में अपने आप को अंतिम अधिकार दे दिया। हम कुछ ही मिनटों में इस पर चर्चा करेंगे।

**न्यायपालिका की स्वतंत्रता क्यों महत्वपूर्ण है?**

न्यायपालिका की स्वतंत्रता आधुनिक, उदार और लोकतांत्रिक राज्य की पहचान है। व्यक्तियों और समाज के हितों के बीच संतुलन बनाए रखने के लिए स्वतंत्र न्यायपालिका की आवश्यकता होती है।

मोंटेस्क्यू ने अपनी पुस्तक स्पिरिट ऑफ लॉज में कहा था कि अगर न्याय करने की शक्ति को विधायी और कार्यपालिका शक्तियों से अलग नहीं किया जाता है तो कोई स्वतंत्रता नहीं रहेगी। इसलिए स्वतंत्र न्यायपालिका एक जीवंत लोकतांत्रिक व्यवस्था की अनिवार्य शर्त है। केवल निष्पक्ष और स्वतंत्र न्यायपालिका ही व्यक्तियों के अधिकारों की सुरक्षा के लिए सुरक्षा कवच के रूप में खड़ी हो सकती है और बिना किसी भय या पक्षपात के न्याय भी कर सकती है।

एस.पी गुप्ता बनाम भारत संघ (1982) के फैसले में, सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि न्यायाधीशों को कठोर और सख्त होना चाहिए,आर्थिक या राजनीतिक सत्ता के सामने अडिग होना चाहिए, और उन्हें कानून के शासन के मूल सिद्धांत को बनाए रखना चाहिए जो कहता है कि चाहे आप कितने ही ऊँचे क्यों न हो, कानून आपके ऊपर है।

यह न्यायपालिका की स्वतंत्रता का सिद्धांत है जो वास्तविक सहभागी लोकतंत्र की स्थापना, कानून के शासन को गतिशील अवधारणा के रूप में बनाए रखने और कमजोर सामुदायिक वर्गों को न्याय प्रदान करने के लिए महत्वपूर्ण है। यह न्यायपालिका की स्वतंत्रता का सिद्धांत है जिसे हमें संविधान के प्रासंगिक प्रावधानों की व्याख्या करते समय ध्यान में रखना चाहिए, यही सर्वोच्च न्यायालय ने एस.पी गुप्ता मामले में कहा था।

**संविधान द्वारा न्यायपालिका की स्वतंत्रता कैसे सुनिश्चित की गई है?**

न्यायपालिका की स्वतंत्रता और निष्पक्षता न्यायाधीशों के निजी अधिकार नहीं होते, हमें इस भ्रम में नहीं रहना चाहिए। न्यायपालिका की स्वतंत्रता न्यायाधीशों का अधिकार नहीं है, यह नागरिकों का अधिकार है।

अंततः न्यायिक वैधता और शक्ति, न्यायालयों, स्वयं न्यायाधीशों और उनके निर्णयों में जनता के विश्वास पर निर्भर करती है। और इसलिए यह सुनिश्चित करना न्यायालय का कर्तव्य है कि लोगों का उन पर से विश्वास और भरोसा कम न हो। न्यायपालिका की स्वतंत्रता वास्तव में किसी भी कानूनी प्रणाली का सबसे बड़ा लक्ष्य है तथा इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए न्यायाधीशों की नियुक्ति की प्रक्रिया को महत्वपूर्ण तंत्र के रूप में देखा जाता है।

**हम न्यायाधीशों की रक्षा कैसे करते हैं और उनकी स्वतंत्रता कैसे सुनिश्चित करते हैं?**

वित्तीय आपातकाल को छोड़कर उनके वेतन में परिवर्तन और कटौती नहीं की जा सकती है। उन्हें कार्यकाल की सुरक्षा दी गई है, इसलिए उनकी महाभियोग प्रक्रिया को बहुत कठिन बनाया गया है। भारतीय सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों को केवल 'साबित कदाचार या असमर्थता' के आधार पर उपबंधित रीति के माध्यम से ही हटाया जा सकता है।

**न्यायाधीशों की नियुक्ति**

आइए जानते हैं अहम सवाल। न्यायाधीशों की नियुक्ति प्रक्रिया निष्पक्ष और पारदर्शी होने पर न्यायपालिका की स्वतंत्रता बरकरार रहेगी। जैसा कि आप जानते हैं कि भारतीय सर्वोच्च न्यायालय दुनिया का सबसे शक्तिशाली न्यायालय है। इसमें 33+1 जज हैं। मूल रूप से संविधान के अनुच्छेद 124 में सात प्लस भारत के मुख्य न्यायाधीश (7+1) का प्रावधान था। लेकिन अनुच्छेद 124 ने संसद को अधिक संख्या निर्धारित करने की शक्ति प्रदान की।

अनुच्छेद 124 कहता है कि सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों के ऐसे न्यायाधीशों से परामर्श करने के बाद की जाएगी जिन्हें राष्ट्रपति आवश्यक समझे। फिर यह कहता है लेकिन न्यायाधीशों की नियुक्ति में भारत के मुख्य न्यायाधीश से हमेशा सलाह ली जाएगी।

**कॉलेजियम सिस्टम कैसे काम करता है?**

जब न्यायाधीश न्यायाधीशों की नियुक्ति कर रहे हों तो आदर्श रूप से व्यवस्था को अधिक सक्षम, स्वतंत्र और निडर न्यायाधीशों की समय पर नियुक्ति सुनिश्चित करनी चाहिए थी। लेकिन कॉलेजियम के फैसलों को बारीकी से जांच करने पर पता चलता है कि कई बार उनके फैसले अंग्रेजी के मौसम की तरह अप्रत्याशित होते हैं। न कोई पारदर्शिता है और न ही कोई जवाबदेही। इसके अलावा कॉलेजियम की एक और बड़ी संवैधानिक समस्या है जिसे हमने अभी अनुच्छेद 124 में देखा है कि राष्ट्रपति सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति में उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों से भी परामर्श कर सकते हैं। लेकिन कॉलेजियम सिस्‍टम में अब उच्‍च न्‍यायालयों के न्‍यायाधीशों से परामर्श की कोई जगह नहीं है।

यदि आप अनुच्‍छेद 124 को देखें कि राष्ट्रपति सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों, उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों और निश्चित रूप से भारत के मुख्य न्यायधीश से परामर्श करेंगे, तो कोई कह सकता है कि संविधान सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति में व्यापक परामर्श प्रक्रिया का पक्षधर है।

मेरे विचार से इस प्रावधान में एक बड़ा गुण है। सर्वोच्च न्यायालय में बुद्धि कुछ गिने-चुने हुए लोगों का एकाधिकार नहीं है। हमारे उच्च न्यायालयों में हमारे पास महान न्यायाधीश मौजूद हैं यदि राष्ट्रपति चाहें तो उन्हें उनसे परामर्श करने का अधिकार होना चाहिए।

तदनुसार इस स्थिति से निपटने के लिए, भारत सरकार ने 2014 में राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग अधिनियम बनाया और संविधान में भी संशोधन किया। लेकिन 2016 में सुप्रीम कोर्ट ने संवैधानिक संशोधन और एनजेएसी अधिनियम को इस आधार पर रद्द कर दिया कि यह भारत के मुख्य न्यायाधीश की राय की प्रधानता को कम करता है, जिसे सुप्रीम कोर्ट ने संविधान की मूल संरचना कहा है।

इस प्रकार निष्कर्ष निकालने के लिए हम कह सकते हैं कि न्यायपालिका की स्वतंत्रता किसी भी लोकतांत्रिक देश के लिए महत्वपूर्ण है।

न्यायिक समीक्षा संविधान की सर्वोच्चता सुनिश्चित करने का एक तंत्र है। न्यायिक सक्रियता अच्छी नहीं है क्योंकि यह शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत के विरुद्ध है।

और सुप्रीम कोर्ट को न्यायिक सक्रियता के माध्यम से कभी भी परिभाषित सीमाओं को पार नहीं करना चाहिए। क्योंकि तब यह शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांतों और संवैधानिकता के सिद्धांतों को नकार देता है। सुप्रीम कोर्ट की देश के शासन में कोई भूमिका नहीं है यह भूमिका सरकार को सौंपी गई है।

 अगले व्याख्यान में हम संविधान में संशोधन करने की संसद की शक्ति पर चर्चा करेंगे।

आपका बहुत बहुत धन्यवाद।

नमस्कार।